International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-8, Issue-5 October - 2021
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

प्राचीन भारत में लोकोत्सवों के स्वरूप एवं आधुनिक काल में इनकी प्रासंगिक महत्ताओं का अध्ययन।

डॉ0 अंशू सरीन
एसोसिएट प्रोफेसर और विभागाध्यक्षा,
बी0एड0 विभाग,
गोकुल दास हिन्दू कन्या महाविद्यालय, मुरादाबाद

डॉ0 गीता परिहार
एसोसिएट प्रोफेसर और विभागाध्यक्षा,
संस्कृत विभाग,
गोकुल दास हिन्दू कन्या महाविद्यालय, मुरादाबाद

किसी भी देश की समृद्धि और सम्पन्नता में संस्कृति का बहुत बड़ा योगदान होता है। भारतीय संस्कृति का भी क्षेत्र बहुत ही व्यापक और समृद्ध है, चाहे वह धर्म का क्षेत्र हो, या दर्शन का क्षेत्र हो, या साहित्य और कला का क्षेत्र हो। इनको देखते हुये लगता है कि हमारी सांस्कृतिक परम्परा कितनी विस्तृत और समृद्ध है।

आदि काल से ही भारतीय संस्कृति में उत्सव, त्यौंहारों, पर्वों आदि का विशेष महत्व रहा है, और यही कारण है कि इनको कई दृष्टि कोणों से भी देखा जाता है। यथा–सामाजिक दृष्टिकोण, मनोरंजन का दृष्टिकोण, सांस्कृतिक दृष्टिकोण और धार्मिक दृष्टिकोण आदि से भी इनका अध्ययन होता है। यह लोकोत्सव व्यक्ति के व्यक्तित्व की वृद्धि में भी सहायक होते हैं। इन लोकोत्सवों के पीछे जो अवधारणायें, दर्शन है वह भी अद्भुत और अलौकिकता का समावेश लिये हुये होता है। भारतीय दर्शन और चिन्तन योग–क्षेम की सार्थकता देखने मिलती है। इसका मुख्य कारण हमारे यहाँ के महर्षियों, तपस्वियों, एवं मनीषियों के चिन्तन का दृष्टिकोण परिलच्छित होता है। इन लोकोत्सवों को मानने से मानव कल्याण की भावना, सुख–समृद्धि और वैभव का विस्तार होता दृष्टिगत होता है।

इन लोकोत्सवों को किसी देवी–देवताओं से भी जोड़ा गया है, जो अपनी अलौकिकता और दिव्यता के लिये जाने जाते हैं। ऋग्वेद से लेकर आधुनिक साहित्य, दर्शन और कला में यह अपने विशिष्ट गुणों के रूप में विद्यमान रहे हैं।

अस्तु यह लोकोत्सव हर जनपद और प्रदेशों में मनाये जाने वाले मुख्य मेले हैं जिन्हें लोकोत्सव भी कहा जाता है। इन लोकोत्सवों की गहराई से शोध किया जाये तो यह पता चलता है कि इन लोकोत्सवों के पीछे किसी देवी/देवता की पूजा आवश्यक रूप से जुड़ी होगी। प्राचीन काल में ऐसे लोकोत्सवों को 'मह' (यात्रा जत्ता) कहा जाता था। काशिका सूत्र (5–1–109) में गंगा जी के बड़े मेले को 'गंगा मह' कहा गया है। और इस प्रकार के मेले उत्तर भारत में गंगा किनारे होते थे, जिनका स्वरूप आज भी हमें 'गंगा दशहरा' जैसे लोकोत्सव देखने को मिलते हैं। उच्च वर्ग या द्विजातियों के जीवन में जो स्थान यज्ञों का था, वही स्थान लोक जीवन में मह (यात्रा) जैसे उत्सवों का था। कालान्तर में ये लोकोत्सवों के नाम से जाने जा लगे।

इस प्रकार हमें विभिन्न प्राचीन ग्रंथों के अनुसंधानों से यह ज्ञात होता है कि लोकोत्सवों (मह) के कई प्रकार हमें दृष्टिगत होते हैं। जैसे– 1. इंद मह (इन्द्रमह), 2. खंदमह (स्कन्दमह), 3. शिवजत्ता (शिव यात्रा), 4. वैसमण जत्ता (वैष्णव यात्रा), 5. नाग जत्ता (नाग–यात्रा), 6. जक्ख–जत्ता (यक्ष–यात्रा), 7. नई जत्ता (नदी जत्ता), 8. तालाब जत्ता (तड़ाग यात्रा), 9. रूक्ख जत्ता (वृक्ष–यात्रा), 10. पष्व जत्ता (पर्वत यात्रा), 11. गिरि जत्ता (गिरि यात्रा) आदि।

1. अग्नि, 2. वनस्पति, 3. औषधि, 4. वीरूध्, 5. इन्द्र, 6. बृहस्पति, 7. सूर्य, 8. वरूण, 9. मित्र, 10. विष्णु, 11. भग, 12. अंश, 13. विक्स्वान्, 14. सविता, 15. पूता, 16. त्वष्टा, 17. गन्धर्व, 18. अप्सरायें, 19. अश्विनी, 20. ब्रह्मणस्पति, 21. अर्पक्षा, 22. अहोरात्र, 23. सूर्य, 24. चन्द्र, 25. आदित्य, 26. बात, 27. पर्णन्य, 28. अन्तरिक्ष, 29. दिशा, 30. आशा, 31. ऊषा, 32. सोम, 33. भव, 34. शर्व, 35. रूद्र, 36.

पशुपति, 37. द्युलोक, 38. नक्षत्र, 39. भूमि, 40. यक्ष, 41. पर्वत, 42. समुद्र नहीं, 43. सरोवर, 44. सर्पीष, 45. जल आय, 46. प्रजापति, 47. यम, 48. पितृ, 49. आदित्य रूद्र वसु, 50. रक्षस, 51. सर्प, 52. पुण्यजन, 53. मृत्यु, 54. ऋतु, 55. ऋतुपति, 56. मास, 57. सेवत्सम, 58. भूत, 59. भूतपति, 60. पंच दिशाओं की देवियों, 61. द्वारका ऋतुओं के देव इत्यादि।

उपरोक्त सूची से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसमें ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं है अपितु देवों का यह समाज एक ही जगह इकट्ठा हो गया। वस्तुतः अग्नि, इन्द्र, बृहस्पति आदि ये शुद्ध वैदिक देवता हैं जिनकी समाज में बहुत ऊँची पद प्रतिष्ठा बहुत ऊँची थी, वहीं दूसरी ओर यक्ष, राक्षस, सर्प, पुण्यजन, भूरा आदि इस कोटि के छोटे–स्तर को देवता हैं जिनका सम्बन्ध आदित्य जातियों से था। भूमि, पर्वत, नदी, समुद्र और नक्षत्र ये सभी भूमि के भौतिक देवता थे जिनकी परम्परायें हमारे साहित्य और लोक साहित्य में पाई जाती हैं।

इसी परम्परा में आगे हम देखते हैं कि प्रतिवर्ष समय–समय पर देवी–देवताओं के मेले होते थे और इस अवसर पर उत्सवों का भी प्रचलन था। और यही परम्परा हमें बौद्ध धर्म साहित्य में भी देखने को मिलती है। बौद्ध ग्रंथ यज्झिम निकाय में गो–व्रत और कुक्करव्रत का वर्णन मिलता है। गो व्रत के अनुयापी अपने सिर सींग बौलते थे और गायों के साथ चरते घूमते रहते थे। इसी प्रकार कुक्कर व्रत के अनुयायी कुछ कुत्ते जैसा व्यवहार भी करते थे।

समाज में लोक देवताओं के विश्वास को 'व्रत' की संज्ञा ही गई है। इसे शक्ति भी कहा गया है।

ऊपर वर्णित इन लोक देवों की परम्परा का उल्लेख भगवत गीता में भी आया है और देवों की पूजा अथवा मान्यता के लिये 'व्रत' शब्द का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः यह 'व्रत' शब्द वैदिक काल से प्रयुक्त होता आ रहा है। जो कि बाद के साहित्यिक ग्रथों में जैसे सूत्रों एवं स्मृतियों में भी इनका वर्णन

मिलता है। व्रत की परिभाषा के कई मत हमें दृष्टिगत होते हैं परन्तु सामान्य तयः 'व्रत' शब्द को देवी–देवता के आदेश या आचरण सम्बन्धी नैतिक विधियों के सम्बन्ध में आता है। 'व्रत' का दूसरा गौण अर्थ 'उपवास' कहा गया है।

इन देवताओं का 'व्रत' पालन करने वाले ब्रतिक अथवा इनकी भक्ति करने वाले भक्त, अथवा इनका भजन आदि करने वाले, अथवा 'मह' या 'उत्सव' के रूप में इनकी यात्रा (जत्त) करने वाले, इन सभी कार्यों के पीछे एक ही भाव था। भगवत गीता में देवताओं रूची देखते हुये उन्हें भगवान की विभूति अथवा नानारूप भी कहा गया है। परन्तु ध्यान से इनका अनुशीलन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि इन देव रूपों के स्वरूप में हमें अनेक लोक–देवताओं के स्वरूप दिखाई पड़ते हैं। यथा–1. विष्णु, 2. रवि, 3. मरीथि, 4. चन्द्र (शशी), 5. इन्द्र (वासवा) 6. रूद्र, 7. वैश्रवण (वित्तेश), 8. अग्नि, 9. मेरू, 10. स्कन्द, 11. सागर, 12. हिमालय, 13. अश्वत्थ वृक्ष (रूक्ख देवता), 14. गन्धर्र, 15. उच्चैःश्रवा, अश्व, 16. ऐरावत (गज), 17. कामधेनु, 18. काम (कन्दर्य), 19. वासुकी (अश्व) सर्प, 20. अनन्त (नाग), 21. वरूण, 22. पितर, 23. थम, 24. सिंह, 25. गरूड़, 26. वायु, 27. मरूर, 28. गंगा नदी, 29. वासुदेव, 30. धनंजय अर्जुन।

इस भगवत गीता में उपरोक्त वर्णित देवों को भगवान विष्णु को सम्बद्ध कर दिया, और यह तालमेय भागवत–धर्म की सबसे बड़ी देन की। गीता में इन देवी–देवताओं का कोई निराकरण नहीं किया गया अपितु इन्हें भगवान विष्णु का ही रूप मानकर पूजा जाने लगा। इसका सबसे प्रबल उदाहरण हमें विष्णु के दशावतारों में स्थित भगवान बुद्ध को भी सम्मलित कर लिया, इसके विपरीत बौद्धों ने हिन्दू–धर्म के देवी–देवताओं का अनादर किया है। उन्हें कहीं सेवक रूप में तो कहीं उन्हें बौद्ध धर्म के किसी देवी–देवता के पैरों के नीचे कुचलते दिखाया गया है।

अस्तु शनैःशनै आगे चलकर ये देवता वाद विस्तारित होने लगा। इसका मुख्य कारण यह भी था कि अनेक जातियों के देवी–देवता स्थापित ये, अपितु विदेशों से आये लोग जो यहाँ बस गये थे उनके देवी देवता भी पूजे जाने लगे। इस प्रकार भारतीय समाज में हमें सभी धर्मों के जाति के लोगों द्वारा पूजित होते रे जो आज तक चले आ रहे हैं। और इतना ही नहीं प्रत्येक जाति के देवी–देवता प्रथक थे, इनमें देवियों की संख्या अधिक थी और इन्हें 'जातहारिणी–देवी' कहा जाता था। साथ ही इन साहित्यों में देश–काल भेद से भी इन्हें देखा गया है जिनकी संख्या हमें 28 जातिहारिणी देवी के रूप में दिखाई देती है।

भारतीय समाज में हमें, आस्तिक निषाद, वर्णशंकर, देशी–विदेशी अनेक लोगों के देवी–देवताओं की पूजा होने लगी, और इन्हें उत्सवों के रूप में रखा जाने लगा यह स्पष्ट दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त समाज में अलग–अलग पेशों की छोटी–छोटी देवियाँ भी थीं जो उनके पेशों (कार्यों) के अनुरूप पूजित होती रहीं। यथा–अयस्करी जाति हारिणी देवी, (लोहारों की देवी), 2. तक्षिणी जातहारिणी देवी (बढ़इयों की देवी), 3. कुलाली जातहारिणी देवी (कुम्हारों की देवी), 4. पदकरी जातहारिणी देवी (चातारों की देवी) आदि 8. इस प्रकार हम आज भी वर्तमान इन जातियों द्वारा पूजा–अर्चना का कार्य निरन्तर चला आ रहा है।

अस्तु अब हम भारतीय प्राचीन लोकोत्सवों के स्वरूपों का सार–संक्षेपीय अध्ययन करेगें। सर्वप्रथम इन लोकोत्सवों का सम्बन्ध ऊपर वर्णित देवी–या देवता के सम्बन्धों को जोड़कर देखा गया। यहाँ इन देवी–देवताओं की जत्ता (यात्रा) का उल्लेख हमें साहित्य, धार्मिक एवं पौराणिक ग्रंथों तथा लोकोचार दृष्टिगत होता है। वस्तुतः यह यात्रायें गावों से सर्वाधिक रूप से जुड़ी हुई हैं कृषक समाज आज भी इन यात्राओं (जत्ताओं) को अधिक महत्व देता है। इसका प्रमुख कारण उसकी आस्था है। यहाँ यह भी इंगित करना समीचीन होगा कि इन यात्राओं में बड़ी–बड़ी दूर–दूर से लोग आते हैं और अपनी श्रद्धा, भक्ति भाव से इसे मानते हैं। धीरे–धीरे ये यात्रायें उत्सवों का रूप धारण करती रहीं। वर्तमान

में ये यात्रायें हम देखते हैं यथा–हनुमान जयन्ती पर मेहन्दी पुर बालाजी का विराट उत्सव, साला सर बालाजी का विराट् उत्सव, श्याम–खाट का विराट् उत्सव, जहारपीर का विराट् उत्सव आदि आज भी भक्ति भाव के साथ लोगों को मनाते हुये देखते हैं।

उपरोक्त कथ्य में यह भी कहा जा सकता है कि ग्रामीण समाज द्वारा अलौकिक देवी–देवताओं को ही पूजित नहीं किया, अपितु पृथ्वी पर दृष्टि गत होने वाले जड़ और चेतन वस्तुओं को भी पूजित किया जाने लगा, इसका कारण युगों–युगों से होने वाली प्राकृतिक क्रियाओं–आपदाओं का सम्बन्ध इनसे जुड़ता दिखाई देता है।

उदाहरण स्वरूप, पर्वतों की पूजा, वृक्षों की पूजा, नदियों तालाबों की पजा काविधान देखने को मिलता है जो आज भी विद्यमान है। इनको भी देवताओं की श्रेणी में रखा गया।

अब हम अपनी कथ्य को पुनः इंगित करते हुये लेख को आगे बढ़ाते हैं। इन लोकोत्सवों में एक शब्द हमें दिखाई पड़ता है वह जन्त (जात/यात्रा) कहलाती जाती थी। इस यात्रा शब्द का उल्लेख हमें संस्कृत भाषा दिखाई देता हैं इसे प्राकृत उल्लेख भाषा में 'जत्त' और हिन्दी भाषा में इसे 'जात' कहा जाता है। इसका सशक्त उदाहरण हिमाचल स्थित नगर कोट की काँगड़ा–देवी की जात बोली जाती है, और यही नहीं स्थानीय देवी–देवताओं की जात कोली और मनाई जाती है। इस यात्रा को प्राचीन काल में 'समाज' के नाम से भी पुकारा जाता था। इनका प्राचीन स्वरूप लोकोत्सव अथवा मेलों के रूप मनाया जाता था। इनके मूल में किसी देवी–देवता को पूजा का विधान था, परन्तु बाह्य रूप में हंसी–खुशी नाच–गान, मेला–तमाशा और खानपान की मस्ती का स्वरूप रहता था।

अस्तु सर्वप्रथम अब हम इन्ही लोकोत्सवों में 'इन्द्रमह' लोकोत्सव का संक्षेपीय अध्ययन करेगें। इस 'इन्द्र–मह' उत्सव को 'इन्द्र ध्वज' या 'शुक्र–यह' भी कहा जाता था। इस लोकोत्सव स्वर हमें वेदों

स्पष्ट दिखाई देता है। अर्थववेद में 'इन्द्रमह' का विशेष उल्लेख मिलता है। इस उत्सव का विशद् वर्णन हमें महाभारत में वर्णित उपरिचर वसु की कथा में मिलता है। जिसमें इन्द्र वसु को अपना मित्र बनाता है और अपनी पूजा करने को कहता है। कालीदास ने अपने ग्रंथ रघुवंश में 'इन्द्र ध्वज' के महोत्सव का वर्णन किया है। इस लोकोत्सव को मनाने से जो आनन्द प्रज्ञा को मिलता है उसका वर्णन 'रघुवंश' में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह उत्सव किस समय मनाया जाता है इसका भी उल्लेख प्राप्तहोता है यथा–रघुवंश और हरिवंश पुराण में इसे शरद् ऋतु में पूजने का उल्लेख मिलता है। जबकि तमिल भाषा के प्रसिद्ध काव्य 'शिलयाधिकारम्' के अनुसार इन्द्र ध्वज–पूजन का विधान चैत्र–पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस काव्य ग्रंथ में इस लोकोत्सव का ज्ञजीव वर्णन मिलता है। जबकि 'अर्थव परिष्टांक संग्रह' नामक ग्रंथ में यह उत्सव भाद्र–पद के शुक्ल–पक्ष में मनाया जाता है। प्रसिद्ध ग्रंथ 'राजतंरगिणी' में भी 'इन्द्र–उत्सव' का वर्णन मिलता है। बौद्ध जानक कथाओं में इसके वर्णन में इस लोकोत्सव की घोषणा की जाती थी ढोल–शंख बजाने वाले धर–जा–जाकर सभी को सूचना देते थे, फिर नागरिक जन छुट्टी मनाकर इसका आनन्द लेते थे। इस उत्सव को अमीर–गरीब सभी मनाते थे और नये–नये कपड़े पहनकर, गले में मालाये डालकर स्त्रियों के साथ सुगंथी लगाकर खाते–पीते थे इस लोकोउत्सव में भांति–भांति के खेल तमाशे, नाच–गाने का आयोजन होता था। साथ ही कहीं–कहीं मल्ल–युद्ध (कुश्ती) कहीं हाथियों का युद्ध (हस्ति युद्ध), कहीं घोड़ों का युद्ध (अश्व युद्ध), भेदों का युद्ध (मेष युद्ध) का खेल दिखाया जाता था इस समय नाटकों का भी प्रचलन था जिसमें गवइयों की आपस में प्रतिर्स्पधा होती थी। नाट–लोग अपनी कलायें दिखाते थे, सपेरे बीन बजाकर लोगों को लुभाते थे। कहीं झूलों पर लोग झूलते थे, कहीं डोलों में बैठकर अपना मनोरंजन किया करते थे। आज के परिवेश में इस पर शोध आवश्यक है कि हमारे देश के किस प्रदेश में यह मनाय जाता है तथा इसका क्या स्वरूप है।

आगे अब हम समाज में प्रचलित प्रसिद्ध लोकोत्सव का अध्ययन करेगें जो नदी यात्रा को नाम से जाना जाता है। इस लोकोत्सव में नदी के देवताओं की पूजा और उससे सम्बन्धित उत्सव से

है। यह उत्सव जैसाकि पूर्व में इंगित किया जा चुका है कि ये गंगा के तटों अथवा उसके समान पवित्र नदियों के तटों (किनारों) पर इस प्रकार के मेले लगते थे। वस्तुतः वैदिक विचारधारा के अनुसार जल अत्यन्त पवित्र माना जाता है। वैदिक मंत्रों में 'अपो देवता' का जगह–जगह उल्लेख हुआ है। नदी, समुद्र, सरोवर, निर्भर, कूप, गड्ढा, आदि में मिलने वाला जल अत्यन्त पवित्र माना गया है। इसी कारण धार्मिक परम्परा में 'नदीमह' और 'तड़ागमह' यात्रा के उत्सवों का आयोजन होता अया है। प्राचीन यज्ञों का कार्य नदी तटों के सहारे फैला हुआ रहा है कि जोकि वर्तमान में यह कर्म देखने को मिल जाता है। नदियों में सिन्धु, सरस्वती, गंगा, यमुना, नर्मदा गोदावरी और काबेरी इन सात महानदियों को पवित्र माना गया है। आर्य और म्लेच्छ बिना किसी भेदभाव के गंगा, सिन्धु सरस्वती आदि का जल पीते हैं।

वस्तुतः गंगा नदी को सबसे अधिक पवित्र और महत्त्वपूर्ण पदवी प्राप्त है। इसे देव नदी और लोक नदी भी कहा गया है। भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसी जल धारा या जलाशय रहा हो जहाँ वर्ष में एक बार अथवा अधिक बार धार्मिक स्नान मेला न लगता हो। नदी जाता (लोकोत्सव) के समान तड़ागयात्रा (तलायजत्त) या तालाब की बात अर्थात ताल का मेला इसके उल्लेख मिलते हैं। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार प्रत्येक पोखर और ताल पर किसी न किसी देवता का वास रहता है विशेषतः ऐसे ताल जिनमें वारामासी जल भरा रहता हो, धार्मिक दृष्टि से पूजा के योग्य समझे जाते हैं तथा उत्सव मनाये जाते हैं।

प्राचीन लोकोत्सव की श्रेणी में 'नागमह' का प्रमुख स्थान रहा है। भारतीय लोकधर्म में नागपूजा का पुराना रूप है। नाग देवता कोउत्सव को 'नागमह' कहा जाता था उनके मेले (उत्सव) यात्रायें नागायात्रा या नागजत्ता कही जाती थी। उनके लिये दी जाने वाली पूजा सामग्री और बलि नागबलि कहलाती थी। आज भी समस्त भारत में नागपूजा की परम्परा प्रचलित है। वैदिक, बौद्ध तथा जैन धर्मों में नाग–पूजा का सन्यवय हुआ है। नागों की माता बुरसा, अनन्त (शेष नाग) का वर्णन हमें

प्राप्त होता है। विष्णु को अनन्त यानि शेषनाग की शय्या पर सोते हैं, इस प्रकार विष्णु और नाग पूजा की धाराओं का सम्मिलन हुआ। इसी प्रकार शिव को नागों का सानिध्य वाला बतलाया गया है।

नागों के सम्बन्ध में दो आख्यान प्रसिद्ध रहे है प्रथम नाग और गरूड़ का संर्घष और दूसरा कथ्य जनमेजरू का नागयज्ञ। इसी प्रकार कृष्ण और कालियनाग को वश में करने की घटना महत्त्वपूर्ण है।

बौद्ध धर्म में भी नागों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनका सर्वाधिक सम्बन्ध भगवान बुद्ध से जुड़ा हुआ है। प्रथम कथ्य यह है कि बुद्ध के जन्म पर नन्द और उपनन्द नाम के दो नागों द्वारा प्रकट होवर उनकी स्तुति की। दूसरी घटना बुद्ध जब नैराजंना नदी में स्नान फटके बोधिवृक्ष की ओर जाने लगे तो नाग राज कालिक ने उनकी स्तुति की और उनके बुद्धत्व की भविष्य वाणी भी की। संबोधि प्राप्त करने के बाद अधिवृक्ष के नीचे ही रहे परन्तु दूसरे सप्ताह मुचुलिन्द वृक्ष के नीचे आ बैठे, वहाँ नागराज्य मुचुलिन्द ने अपने बिल ने निकल कर उनके ऊपर फन फैलाकर छाया की। इसी प्रकार नागों से सम्बन्धित कई कथायें बुद्ध के जीवन से जुड़ी हुई हैं।

नागों की पूजा का एक स्थान माणियार मठ में पाया जाता है जो कि गुप्तकाल का है। इसमें एक मंदिर बनाया गया जो अभी तक विद्यमान है। प्राचीन काल में इस तरह के मन्दिर 'नागधर' कहलाते थे।

लोक समाज में नागों का सम्बन्ध नाग पंचमी उत्सव के रूप में अभी तक मनाया जाता है। श्रावण शुक्ल पंचमी को नागपंचमी का लोकोत्सव होता हैं। उस दिन घर दीवार पोतकर उन पर सर्पों की आकृति दारवाजों के दोनों ओर आकृति बनाते हैं। लोक मान्यताओं के अनुसार नागों का सम्बन्ध प्रायः जलाशयों से माना जाता है। इसका प्रामाणिक उदाहरण मथुरा से प्राप्त नागमूर्तियाँ प्रायः पुष्करणी के किनारे पर प्रतिष्ठित मिली हैं। नाग परम्परा का जो रूप हमें कश्मीर में मिलता है वह

अन्यत्र नहीं मिलता। वहाँ नीलमत पुराण के अनुसार लगभग 500 नाग देवताओं की सूची मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नागालोकोत्सव की परम्परा प्राचीनतम् परम्पराओं में आती है।

हम एक अन्य लोकोत्सव का वर्णन सार–संक्षेप के साथ करेगें जो कि भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम श्रृंखला में आता है। इसें 'वृक्षमह' की जत्त या पूजा भी कहा जाता है। भारतीय साहित्य और कला में देवताओं के रूपों की मान्यता एवं पूजा का विधि–विधान मिलता है। पीपल, वट, तुलसी, आमल (आँवला) की पूजा अभी तक समाज में इतनी अधिक व्यात है कि ऊँच–नीच सभी प्रकार के स्तरों द्वारा इसे मान्यता मिली हुई है। जिन्हें चैत्य–वृक्ष कहा जाता था। उनके स्थानों पर मन्दिर भी बनाये जाते थे और इन्हें रूक्ख घर की संज्ञा से अभिहित किया गया है। भरहुत, साँची तथा मथुरा की कला में इनके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। इन मन्दिरों में पीपल वृक्ष (बोधिवृक्ष) लगा होता था, इन मन्दिरों की छतें नहीं होती थी बल्कि बीच का भाग आकाश की ओर खुला रहता था, केवल चारों ओर दीवार बनाई जाती थी।

हिन्दू, जैन तथा बौद्ध इन धर्मों ने वृक्ष पूजा की परम्परा को भी स्वीकार किया गया। हिन्दू धर्म में वृक्षों को भी पवित्रता प्रदान की गई है जोकि कई रूपों में पायी जाती है। हिन्दू धर्म में अश्वत्थ (अक्षय वट) जो कभी क्षय को प्राप्त नहीं होता है। अर्थववेद में अश्वत्थ का उल्लेख मिलता है।

''अश्वत्यो देवसदनस्तृतीय स्याभितो दिवि,
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।।''

इसी प्रकार पीपल वृक्ष भी पूजनीय कहे जाते हैं क्योंकि इन पर देवताओं का निवास होता है– लोक जनमानस इस प्रकार का विश्वास आज तक पाया जाता है तथा यह विश्वास इतना दृढ़ है कि कोई भी हिन्दू पीपल की शाखा के काटे जाने को सहन नहीं कर पाता, उसकी मानसिक प्रक्रिया इस प्रकार की हो जाती है कि जैसे किसी देवता के जीवित अंगों को उससे अलग किया जा रहा हो। धर्म की इस कोमल भावना को उदाहरण शायद ही कहीं मिले।

इसी प्रकार वृक्ष पूजा की प्राचीनतम अवधारणा और मान्यता हमें 'कल्प–वृक्ष' में मानी जाती रही है। कल्प वृक्ष का वैदिक संहिताओं में प्राप्त नहीं होता। वस्तुतः इसकी परम्परा लोक मानस में अधिकता से पायी जाती है। इससे जुड़ी समुद्र–मन्थन की कथा में रत्नों के साथ कल्पवृक्ष का प्रादुभाव हुआ माना जाता है जोक इन्द्र के स्वर्गलोक के नन्दन वन से आया था। एक अन्य माना जाता है। रामायण, महाभारत, बौद्ध दिव्यावदान ग्रंथ, जैन साहित्य में उत्तर–कुरू देश में सिद्ध लोगों का निवास है जहाँ सदैव फल–फूल वाले वृक्षों का वर्णन पाया जाता है।

भारत के अनुसार उत्तर–कुरू देश में सिद्ध लोगों का निवास है जहाँ सदैव फल–फूल वाले वृक्षों की भरमार है। उन वृक्षों में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली शान्तियाँ हैं। यहाँ के कुछ वृक्षों में अमृत के समान दूध निकलता है। वृक्षों की शाखाओं से वस्त्राभूषण उत्पन्न होते हैं और शाखाओं से अप्सराओं के समान स्त्रियाँ–पुरूषों के जोड़े उत्पन्न होते हैं।

बौद्धों के ग्रंथ 'महावाणिज जातक' में इस वृक्ष की कथा पायी जाती है। इसके सबल उदाहरण हमें बौद्ध कला में चित्रित किया गया है।

उपरोक्त वृक्षों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के वृक्षों को पवित्र माना गया है और किसी न किसी रूप में उनका उत्सव मनाया जाता है। उदाहरण स्वरूप आमलकी (आँवला) वृक्ष की पूजा कार्तिक माह में की जाती है और जो आज तक उत्सव एवं पूजा के रूप में दृष्टिगत होती है।

इस 'रूक्रव मह' एक और रूप उज्जाणमह' भी था। इसका तात्पर्य यह था कि वृक्षपूजा का उत्सव मनाया जाता था, उसी प्रकार वृक्षों से भरे हुये उद्यान में उत्सव क्रीड़ा, गोष्ठी, समाज (यात्रा) आदि का आयोजन होता था। इस प्रकार की क्रीड़ा को पालि साहित्य में उड्यान–क्रीड़ा कहा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन लोक समाज में इन लोकोत्सवों का स्वरूप हमें देखने को मिलता है। उपरोक्त वर्णित लोकोत्सवों के अतिरिक्त कुछ अन्य लोकोत्सव और भी है यथा–'सागर–मह', दरीमह, स्तूप या चैत्यभट्ट, मुकुन्दमह, थक्खयह (यक्षमह), खन्दमह, रूद्दमह, गिरमिह आदि लोकोत्सवों की परम्परा भी हमें देखने को मिलती है।

इसके अतिरिक्त 'वीर', 'महावीर', की पूजा और उत्सव सनातन रूप से चला आ रहा है। इसका प्रबल उदाहरण तुलसीदास कृत विनय–पत्रिका में महावीर की आराधना का रूप दृष्टिगत होता है। इसके अलावा 'योगिनी' आदि की पूजा उत्सवों आदि का वर्णन हमें आज भी दृष्टिगत होते हैं।

अब हम यहाँ आधुनिक परिवेश में मनाये जाने वाले लोकोत्सवों का भी संक्षिप्त अध्ययन करेगें यथा–रामनवी का लोकोत्सव चैत्र मास की दूसरी महत्वपूर्ण तिथि नवमी मानी जाती है जो शुक्लपक्ष में होती है। राम नवमी का लोकोत्सव सम्पूर्ण भारत में हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाता है। इस उत्सव में देव पूजा, और भक्ति का समन्यवय देखने को मिलता है। इसी प्रकार अक्षय तृतीया का पर्व अथवा लोकोत्सव वैसाख मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को मनाया जाता है। इस दिन उपवास तथा वासुदेव की पूजा अक्षत (चावल) से की जाती है। हवन तथा दान की क्रियायें भी जुड़ी हैं। भविष्य पुराण में इसका विस्तार से उल्लेख मिलता है।

इसी क्रम में श्रावण मास में अनेकों पर्व, त्यौहार एवं उत्सवों का आगमन होता है। नाग पंचमी का उत्सव जिसका उल्लेख पूर्व मैं भी हो चुका है। इसी क्रम में रक्षा बन्धन का स्वरूप भी देखने को मिलता है। जो श्रावण की पूर्णिमा को अपराह्न में किया जाता है। प्राचीन साहित्य तथा ग्रव्यों के अध्ययन से वह पता चलता है कि राजपुरोहित 'रक्षा' बाँधा करते थे और मंत्र भी बोलते थे और कहते थे कि मैं आपको 'रक्षा' बाँधता हूँ जिसके दानवों के राजा बल्कि बाँधे गये थे, हे रक्षा तुम यहाँ से न हटो न हटो। इस प्रकार इसे सभी को बँधवाना चाहिये, ऐसा करने पर व्यक्ति वर्ष भर प्रसन्नता

के साथ रहता है। इन्द्राणी ने इन्द्र के दाहिने हाथ में रक्षा बाँधकर उसे इतना योग्य बना दिया था कि उसने असुरों को हरा दिया। वस्तुतः यह कृत्य अब भी होता है पुरोहित लोग दाहिनी कलाई में रक्षा बाँधते हैं और दीक्षा प्राप्त करते हैं। उत्तर–प्रदेश एवं गुजरात आदि स्थानों में नारियाँ (बहनें) अपने भाई को रक्षा बाँधती हैं और भेंटें लेती हैं। आगे क्रम में श्रावण माह की कृष्णपक्ष की अष्टमी को 'कृष्णजन्माष्टमी' का लोकोत्सव आज भी प्रचलित है। जो कि सम्पूर्ण भारत में बनाया जाता है। वस्तुतः इसकी पूजा का विधि–विधान भी व्यापक रूप से दिखाई पड़ता है जिसे जानना सर्वथा आवश्यक है। आज जिस प्रकार से हम इसे मनाते हैं प्राचीनकाल में यह उस प्रकार न था। इससे आगे भाद्रपद में के शुक्ल पक्ष में पड़ने वाली चतुर्थी को गणेश चतुर्थी का लोकोत्सव मनाया जाता है। इसे वरद चतुर्थी के नाम से भी जाना जाता है। आजकल गणेश सर्वाधिक प्रचलित देव हैं और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य में इनका आवाहन होता है। इसके उत्सव का भी प्रथम विधि–विधान है, परन्तु समय के इस काल में थोड़ा बदलाव आ गया है। लोकोत्सव के इस क्रम में दुर्गोत्सव का क्रम आता है जोकि सम्पूर्ण भारत में आश्विन शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि से लेकर नवमी तक दुर्गा पूजा का उत्सव मनाया जाता है जिसे नवरात्र भी कहते हैं। यह उत्सव कुछ विशिष्टता के साथ बंगाल, बिहार तथा आसाम में मनाया जाता है। दुर्गा पूजा का उत्सव सभी वर्णों द्वारा किया जा सकता है और लोग आज भी करते भी हें। इस लोकोत्सव में 'व्रत' का भी बड़ा ही विधि विधान पाया जाता है। जन समाज जिसे में सभी प्रकार के व्यक्ति होते हैं अपनी–अपनी सुविधा प्रसार इसका संकल्प लेते हैं। आज कल दुर्गा उत्सव किस प्रकार मनाया जाता है इसे हम सब जानते ही है। यहाँ उसका विशद् उल्लेख आवश्यक नहीं है। परन्तु यहाँ यह ध्यान देना उचित होगा कि शास्त्रों के अनुसार दुर्गा पूजा उत्सव का प्रचलन कम ही होता है।

इसी प्रकार इन लोकोत्सवों के क्रम में विजयादशमी या दीपावली का लोकोत्सव भारी स्र्बोल्लस के साथ सम्पूर्ण भारत में मनाया जाता है। यह अश्विन शुक्ल की दशमी तिथि को विजयादशमी कहा जाता है। उत्तर भारत में इस अवसर पर रामलीला का उत्सव दस दिनों तक चलता है और अश्विन

की दशमी को इसकी समाप्ति हो जाती है। जिस दिन रावण एवं उसके साथियों की आकृतियाँ जलाई जाती हैं। और इस अवसर कई कृत्य भी होते है जैसे– हथियारों की पूजा, दशहरा या इससे सम्बन्धित वृत्तियों (पेशों) के औजारों की पूजा की जाती है। दीपावली दीपों के जलाने का प्रचलन सम्पूर्ण भारत में मिलत है। किन्तु इसके कृत्य (कार्य) विभिन्न प्रकार से विभिन्न युगों एवं विभिन्न प्रान्तों में सम्पादित होते हैं। यह पर्व अथवा उत्सव किसी देव या देवी के सम्मान में किया गया यह केवल एक उत्सव नहीं हैं, जैसा कि कृष्ण जन्माष्टमी या दुर्गाष्टमी है। यह उत्सव चार पाँच दिनों तक चलता रहता है। वस्तुतः दीपावली के दिवस मात्र तीन ही हैं। इसे ग्रंथों में दीपावली या दीपालिका की संज्ञा दी हुई है। परन्तु इन सभी बातों के संयोग से दीपावली लगभग–5 दिनों तक चलती रहती है जैसे धन–पूजा, नरकासुर पर विष्णु विजय का उत्सव, लक्ष्मी पूजा, बलि पर विष्णु की द्यूत दिवस एवं भाई–बहन के प्यार के आदान–प्रदान का उत्सव।

उपरोक्त लोकोत्सव के क्रम में हमें मकर संक्राति उत्सव, महाशिवरात्रि उत्सव, आदि देखने में आते हैं। इससे आगे के लोकोत्सव में हमें 'होलिका' (होली) क्रम आता है जिसे सम्पूर्ण भारत में इसे मनाया जाता है। होलिका दहन का उत्सव मनाने में कहीं–कहीं अन्तर पाया जाता है जैसे बंगाल में होलिका दहन की क्रिया नहीं होती। इस अवसर पर लोग अबीर–गुलाल रंग आदि का प्रयोग एक दूसरे पर करते हैं। यह फाल्गुन पूर्णिमा पर मनाया जाता है। लोग होलिका दहन के समय परिक्रमा करते हैं, अग्नि में नारियल फेंकते हैं, गेहूँ, जो आदि के डंठल फेंकते हैं और इनके अधजले अशं का प्रसाद बनाते हैं। विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न विधियों का प्रचलन इसे मनाने का है। वस्तुतः यह एक भारी लोकोत्सव है जिसमें लोग हर्ष–उल्लास, धार्मिकता के साथ इसे मनाता है। इस अवसर लोग अश्लील गानों को गाकर आनन्द भी उठाते हैं। यह लोकोत्सव प्रेम और आनन्द मनाने का उत्सव है।

अन्त में यह कहना उपयुक्त होगा कि भारत में लोकोत्सवों की भरमार है। यहाँ हमने कुछ प्राचीन लोकोत्सव पर अध्ययन किया जो आज भी किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं। दूसरे उत्सवों जो

अध्ययन किया गया है, वह आधुनिक प्रचलित लोकोत्सव हैं जो कहीं भारी अवस्था में मनाये जाते हैं तो कुछ गौण रूप से मनाये जाते हैं। वस्तुतः इन लोकोत्सवों की सूची बहुत ही वृहद है जिसका अध्ययन यहाँ समीचीन नहीं है। यह शोध का विषय है जिसे गहन अध्ययन के द्वारा ही समझा जा सकता है।

संदर्भः–

1. जायाधम्म कहा (ज्ञाता धर्मकथा)– 1, 25 बैद्य संस्करण–पृ. 23
2. अर्थववेद – 11 वां काण्ड, सूक्त–6/23– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थाण, बरेली
3. मज्झिम निकाय, पपंचसूदनी, भाग, 3, पृ. 100
4. धर्मशास्त्र का इतिहास (चतुर्थभाग), डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे पृ. 9, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, व्यवसाय 1984
5. भगवत गीता अध्याय – 10, विभूति योग – गोरखपुर।
6. प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञानः डॉ. लीलकंठ पुरूषोत्तम जोशी, पृ. 3 बिहार राष्ट्र भाषा – परिषद, पटना–1976
7. काश्यप संहिता, रेवती कल्प, पृ. 153–162
8. वही पृ. 153–162
9. महाभारत – आदि पर्व अध्याय – 57। गोरखपुर
10. महाभारत, भीष्मपर्व – 9/37–38
11. अर्थववेद – 19 वां काण्ड, 29/6 वाँ सूक्त, पं. श्री राम शर्मा, बेरली 1994
12. महाभारत – भीष्म पर्व – 7/2–11
13. भविष्योत्तर पुराण – 137–19–20
14. वही – पृ. 19–20

!!.....!!